बिज़नेस स्टैंडर्ड

न्यायपालिका में आंतरिक सुधार से भी रुकेगा मुकदमों का अंबार

हाल में आयोजित मुख्य न्यायाधीशों के वार्षिक सम्मेलन में 21 प्रस्ताव पारित किए गए। इनमें से अंतिम दो प्रस्तावों में सरकार द्वारा व्यावसायिक अदालतों के गठन के लिए उठाए गए कदमों की सराहना की गई। हर बार की तरह इस बार भी इस सम्मेलन में कई समितियों और प्रकोष्ठों का गठन किया गया। सम्मेलन के दौरान कई छोटे-मोटे फैसले लिए गए जिनमें सेवानिवृत्त न्यायाधीश के घरेलू नौकर के वेतन में समानता लाने के बारे में न्यायिक समिति की एक रिपोर्ट को स्वीकार करना भी शामिल था। लेकिन यह सम्मेलन उस समय अचानक सुर्खियों में आ गया जब समापन समारोह में देश के मुख्य न्यायाधीश भावुक हो गए।

सम्मेलन में पारित किसी भी प्रस्ताव में इस बीमार व्यवस्था को सुधारने के लिए न्यायपालिका के अंदर से कोई आवाज नहीं सुनाई दी। उदाहरण के लिए छुट्टियों की संख्या 195 से कम करने और काम के घंटे बढ़ाने जैसा कोई उपाय नहीं सुझाया गया। देश के महान्यायवादी ने कुछ दिन बाद मुख्य न्यायाधीश से कहा कि वर्षों से अदालतों में लंबित पड़े मामलों की जिम्मेदारी न्यायाधीशों की भी बनती है। उन्होंने तो यहां तक कहा कि उद्योग जगत से जुड़े मामलों को सामान्य मामलों पर बहुत ज्यादा तरजीह दी जाती है। महान्यायवादी ने यह सुझाव भी दिया कि मामलों को लंबा खींचने वाले बड़े उद्योगों पर भारी जुर्माना किया जाना चाहिए।

इसकी अगली सुबह न्यायालय ने चार साल से एकदूसरे से लड़ रही कंपनियों पर 50 लाख रुपये का जुर्माना लगा दिया। इससे कई लोगों को भौंहें तन गई क्योंकि मामलों के निपटारे में देरी के लिए जवाबदेही तय करने का कोई तय पैमाना नहीं है। उदाहरण के लिए अदालत की कार्यवाही स्थगित कराना वकील के तरकश का एक अहम हथियार होता है लेकिन इसकी इजाजत देने वाले न्यायाधीश को भी कुछ स्पष्टीकरण देने की जरूरत है। इससे जनता का कितना नुकसान होता है इसका अंदाजा लगाना मुश्किल है। स्टार इंडिया के मामले में न्यायालय के एक अंदाज के मुताबिक वकील अदालत में एक बार की पेशी के लिए अपने कॉरपोरेट मुवक्किल से 10 लाख रुपये या उससे अधिक रकम वसूल रहा था जबकि उच्चतम न्यायालय ने इसके लिए 8,000 रुपये की राशि तय कर रखी है। जाहिर है इसकी गाज मुवक्किल पर ही पड़ेगी।

किसानों की आत्महत्या से संबंधित एक जनहित याचिका पर सुनवाई करते हुए न्यायालय ने बार-बार निर्देश देने के बावजूद हलफनामा दाखिल नहीं करने के लिए सरकार पर 25,000 रुपये का जुर्माना लगाया। न्यायालय का कहना था कि सरकार इस मामले को लेकर गंभीर नहीं है। करदाताओं को सरकार को दंडित करना होगा- दोषी अधिकारियों को नहीं। कुछ हफ्ते पहले एक अन्य खंडपीठ ने एक जर्मन फर्म सहित तीन कंपनियों पर 25 लाख रुपये का जुर्माना किया। न्यायालय का कहना था कि यह 'धनबल और अनैतिक मुकदमेबाजी' के दम पर 18 साल तक न्यायिक प्रक्रिया का दुरुपयोग करने का उदाहरण है। यह राशि कानूनी मदद मुहैया कराने वाली संस्था को दी जाएगी। इस बात के कोई संकेत नहीं है कि रॉबिनहुड किस्म का यह तरीका एक नई प्रवृत्ति की शुरुआत होगा या फिर ये फैसले महज प्रतिमान बनकर रह जाएंगे। मुख्य न्यायाधीश ने कहा कि उनका आदेश केवल 'प्रयोगात्मक' है।

उच्च न्यायालयों के न्यायाधीश भी बेकार के मुकदमों से क्षुब्ध लगते हैं। हाल में दिल्ली उच्च न्यायालय ने पुरी कन्सट्रक्शंस बनाम एलऐंडटी मामले में अपना रोना रोते हुए कहा कि उसे वरिष्ठï वकीलों की 'प्रपंची और बेहद लंबी' दलीलों को सुनना पड़ा। अपने फैसले में न्यायालय ने कहा, 'अदालत ने उनकी मौखिक दलीलें कम करने का असफल प्रयास किया, लिखित दस्तावेजों को सीमा में रखने का प्रयास भी नाकाम रहा। उम्मीद की जानी चाहिए कि ऐसे मामलों में दलीलों को सीमित करने के लिए न्यायिक व्यवस्था में स्पष्टïता होगी ताकि अपीलों का निपटारा समय पर किया जा सके।'

सी कंस्ट्रक्शन लिमिटेड बनाम इंटरटॉल मामले में उच्च न्यायालय ने लागत के तौर पर एक लाख रुपये का जुर्माना किया। न्यायालय ने इस बात पर खेद जताया कि पिछले चार दशकों से अदालतों में 'सत्य' को कष्टï उठाना पड़ रहा है। न्यायालय ने कहा, 'अदालतों में अब भी ऐसे मामलों की भरमार है जो झूठे और बेतुके हैं। न्यायिक व्यवस्था चरमरा गई है और ऐसे मामले दाखिल करने वाले गलत उद्देश्यों के लिए अदालतों का अहम समय बरबाद कर रहे हैं।' ऐसा लग रहा है कि न्यायाधीशों का अदालतों की कार्यवाही पर कोई नियंत्रण नहीं रह गया है जबकि उनकी आंखों के सामने ही इसका दुरुपयोग हो रहा है।

उच्चतम स्तर पर न्यायाधीश अपीलों की संख्या सीमित करके शुरुआत कर सकते हैं क्योंकि इन अपीलों को उनके विवेक पर ही सुनवाई के लिए स्वीकार किया जाता है। हाल में आए एक सर्वेक्षण के मुताबिक लगभग आधी अपीलों को सुनवाई के लिए स्वीकार किया जाता है। सालों बाद इनमें से अधिकांश को कुछ ही वाक्यों में निपटा दिया जाता है क्योंकि समय बेहतर पंच की भूमिका निभाता है। इस वर्ष जनवरी में एक संविधान पीठ ने इस मुद्दे पर विचार किया लेकिन वह इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि न्यायाधीशों का विवेक अपार है।

वार्षिक सम्मेलन में मुख्य न्यायाधीश उन तरीकों पर विचार-विमर्श कर सकते थे जिनसे उनके साथी न्यायाधीशों को अदालतों का समय बरबाद करने वाले और मुवक्किलों का बिल बढ़ाने वाले मामलों को निपटाने में सहूलियत होती। न्यायाधीश अक्सर समस्या की पहचान कर लक्षणों के बारे में लिख चुके हैं लेकिन ऐसा लगता है कि वे समाधान से दूर भाग रहे हैं। कई लोग न्यायाधीशों को भगवान समान मानते हैं और ऐसा लगता है कि या तो वे भी देवता की तरह अपनी जिम्मेदारी उठाने में शक्तिहीन हैं या फिर अन्याय को रोकने के लिए अपनी शक्ति का इस्तेमाल करने के इच्छुक नही हैं।

दैनिक जागरण

इंटरनेट उपनिवेशवाद पर अंकुश

तरुण विजय

यदि आपको पता चले कि जो पत्र अभी आप लिख रहे हैं या प्राप्त कर रहे हैं और आपकी हर बात तथा बाजार में होने वाला हर खर्च कोई अनजान व्यक्ति देख रहा है और उन तमाम विवरणों का किसी विदेशी सुरक्षा एजेंसी द्वारा विश्लेषण कर सामरिक नीतियां बनाई जा रही हैं, तो आपको कैसे लगेगा? गूगल तथा इसके जैसी अन्य अमेरिकी कंपनियां, जो इंटरनेट के क्षेत्र में सक्रिय हैं, देश के करोड़ों लोगों द्वारा उनकी सेवाओं का इस्तेमाल किए जाते समय समस्त जानकारियां अपने अमेरिका स्थित मुख्यालयों में 'पार्क' करती हैं। इन सब पर किसी भी भारतीय एजेंसी अथवा शासन के किसी भी अंग का न कोई अंकुश होता है, न ही इस सामग्री के उपयोग पर वे नजर रख पाते हैं। वर्ष 2013 में अमेरिकी राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार ने यह स्वीकार किया था कि भारत सहित विश्व के अनेक देशों के राष्ट्राध्यक्षों व प्रमुख नेताओं के इंटरनेट डाटा उन्होंने हासिल किए, क्योंकि अमेरिकी सुरक्षा व्यवस्था मजबूत करने के सामने उनके लिए अन्य कोई भी बात वैधानिक-अवैधानिक मानी ही नहीं जाती।

भारत ने इन तमाम ताकतवर एजेंसियों की दादगीरी खत्म करने के लिए भूस्थानिक विवरण अधिनियम लाने का फैसला किया है, जिसका प्रारूप गृह मंत्रालय की वेबसाइट पर सार्वजनिक कर दिया गया है। इस पर बहस हो रही है और अनेक सुझाव एवं आलोचनाएं भी प्राप्त हो रही हैं। निश्चित रूप से सरकार

इन सबको ध्यान में रखकर विधेयक को अंतिम रूप देगी, परंतु इतना तय है कि भारतीय जानकारियां अवैधानिक रूप से विदेश ले जाने तथा भारतीय कानून की अवज्ञा पर सौ करोड़ रुपये जुर्माना और व्यापार बंद करने का दंड भी दिया जा सकेगा।

ये भारतीय जानकारियां या डाटा हैं क्या? आपके फोन नंबर, उनके माध्यम से आपके पते, आपके कामकाज और खर्च करने के तरीकों का खाका, ई-मेल पर आपको आने वाले पत्र और आपका संपर्क संसार, वीजा या मास्टर कार्ड के जरिये किए जाने वाले व्यय और लिए जाने वाले कर्ज, आपकी व्यक्तिगत जानकारियां, मजबूतियां और दुर्बलताएं-अर्थात आप कुल जमा इस दुनिया में क्या करते, लिखते और सोचते हैं, यह सब इकट्ठा एक थैले में बंद कर दिया जाए, तो उसे आपका संपूर्ण डाटा प्रोफाइल कहा जाएगा। यह उतना ही महत्वपूर्ण और निजी है, जितना आपका शयनकक्ष या स्नानागार। यहां किसी और की दखल आपको या किसी को भी स्वीकार नहीं हो सकती, क्योंकि यह आपकी संपदा है। लेकिन गूगल और याहू जैसी कंपनियां आपके ई-मेल के तमाम डाटा बिना आपकी जानकारी के अमेरिकी खुफिया एजेंसियों को दे देती हैं।

इस कारण भारत के अत्यंत महत्वपूर्ण नेता, शासक, अधिकारी, कर्मचारी, व्यापारी, बुद्धिजीवी, लेखक, पत्रकार, सैन्य अधिकारी क्या करते, सोचते और लिखते हैं, इसका पूरा विश्लेषण उनके डाटा के माध्यम से विदेशी खुफिया एजेंसियां करती हैं और अगले बीस से पच्चीस साल भारतीयों को प्रभावित करने, अपनी नीतियों को लागू करवाने तथा यहां की प्रगति रोकने के षड्यंत्र कार्यान्वित करने की योजनाएं बनाती हैं। मैंने जब राज्यसभा में यह विषय उठाया, तो सभी दलों के सांसदों ने गूगल द्वारा भारतीय कानूनों का उल्लंघन किए जाने पर आपत्ति जताई और अंततः गूगल द्वारा किए जा रहे मैपाथन (सामान्य नागरिकों से अपने प्रदेश के नक्शे मांगने का अभियान) को बंद करना पड़ा तथा गूगल के विरुद्ध भारत सरकार ने एफआईआर दर्ज करवा कर सीबीआई जांच भी बिठाई। यह बहुत बड़ा कदम था और तत्कालीन रक्षा मंत्री ए के एंटनी ने सदन में मुझसे कहा, तरुण, यू आर वन मैन बटालियन अगेंस्ट गूगल वॉयलेशन्स-तरुण, आप गूगल के अवैधानिक कामों के खिलाफ अकेली फौज हो।

नरेंद्र मोदी सरकार ने इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए सरकारी अधिकारियों द्वारा जीमेल और याहू के उपयोग पर प्रतिबंध लगा दिया। अब गृह मंत्रालय द्वारा एक ऐसा कानून लाया जा रहा है, जिसके अंतर्गत इन बड़ी इंटरनेट एजेंसियों के निरंकुश जानकारी संपदा एकत्रीकरण पर कठोर नियंत्रण होगा और उल्लंघन करने वालों को कड़ी सजा दी जाएगी।भारत की कोई भी संपदा-चाहे वह जानकारी की हो अथवा कोहिनूर जैसी हीरे-जवाहरात की, वह तार्किक ढंग से भारत के पास ही रहनी चाहिए और उसका स्वामित्व तथा नियंत्रण भारतीयों के हाथ में होना चाहिए। पहले के उपनिवेशवादी भारत का कोहिनूर चुराकर ले गए, अब इंटरनेट उपनिवेशवादी जानकारी चुराकर ले जा रहे हैं। यह जानकारी कितनी

खतरनाक हो सकती है, इसके दो बड़े उदाहरण 26/11 का मुंबई हमला और हाल ही में हुआ पठानकोट हमला है। डेविड हेडली ने गूगल अर्थ के उपयोग से ही अपनी टीम के साथ कराची से तालमेल करते हुए मुंबई हमले की योजना को मूर्त रूप दिया था और पठानकोट हमले में भी गूगल के डाटा का उपयोग हुआ। गूगल ने अपने पोर्टल पर भारत के बम डिपो, युद्धक विमानों के हैंगर, परमाणु संयंत्रों के भी नामोल्लेख के साथ डाटा प्रसारित किया हुआ है।आवश्यक है कि भारतीय पोर्टल और इंटरनेट सेवाओं को गूगल के मुकाबले ज्यादा मजबूत किया जाए। भारत ने भुवन नाम का पोर्टल, जो नक्शे और अन्य जानकारियों में गूगल अर्थ का पर्याय कहा जाता है, बनाया है। पर वह बहुत कमजोर और आज के इंटरनेट उपयोगकर्ताओं के लिए कम लाभकारी है। भारतीय सर्वेक्षण विभाग को गूगल अर्थ के सामने उससे भी बेहतर बनाने का इरादा रखना चाहिए। विदेशी कंपनियों के भरोसे भारत की तथ्य संपदा का दोहन करते रहना दीर्घकालिक दृष्टि से भारतीय सुरक्षा तथा भारतीय नागरिकों की निजी जानकारियों की रक्षा के लि घातक ही नहीं, बल्कि स्पष्टतः शत्रुओं को बिना प्रयास भारत पर आक्रमण करने के लिए आवश्यक जानकारियां मुफ्त में उपलब्ध कराने जैसा है। मोदी सरकार ने भूस्थानिक अधिनियम लाकर इस खतरे को रोकने का जो प्रयास किया है, उसका समर्थन करना चाहिए तथा इसके विरोध में गूगल के जनसंपर्क अभियान के भ्रम में नहीं फंसना चाहिए।

-लेखक भाजपा के राज्यसभा सांसद हैं

दैनिक भास्कर

मॉरीशस का लूपहोल बंद करना फायदेमंद होगा

आर. जगन्नाथन

पिछले हफ्तेसरकार ने मॉरीशस के रास्ते टैक्स बचाने के उपायों को बंद कर दिया। मॉरीशस की कंपनियों को अपना भारतीय निवेश (प्रॉपर्टी, लिस्टेड या अनलिस्टेड शेयर) बेचने पर कोई टैक्स नहीं देना पड़ता था। भारत ने मॉरीशस के साथ 1983 में हुई दोहरे कराधान से बचाव संधि (डीटीएसी) में संशोधन पर मंगलवार को पोर्ट लुई में हस्ताक्षर किए। इसके तहत एक अप्रैल 2017 से पहले भारत में मौजूदा संपत्ति, शेयर बेचने पर मॉरीशस की कंपनियों को कोई टैक्स नहीं लगेगा। लेकिन एक अप्रैल 2017 के बाद खरीदी गई संपत्ति, शेयर बेचने पर दो साल तक आधी दर से और एक अप्रैल 2019 के बाद पूरा कैपिटल गैन टैक्स देना होगा। संशोधित संधि के मुताबिक दो साल तक टैक्स में रियायत का फायदा मॉरीशस की उसी कंपनी को मिलेगा जो यह साबित कर देगी

कि उसने मॉरीशस में कम से कम 27 लाख रुपए खर्च किए हैं और वह 'शेल' या 'मुखौटा' कंपनी नहीं है। दो अन्य देशों - सिंगापुर और साइप्रस के साथ भी टैक्स कानून के प्रावधानों में इसी तरह की खामियां हैं, जो आने वाले समय में दूर होंगी। अभी मॉरीशस के साथ जो संधि है उसके तहत वहां की कंपनियों को भारत में हुए पूंजीगत लाभ (कैपिटल गैन्स) पर टैक्स नहीं लगता है और मॉरीशस में हुए ऐसे लाभ पर कोई टैक्स नहीं देना पड़ता है।

इसी के साथ पूंजी बाजार नियामक सेबी पार्टिसिपेटरी नोट (पी-नोट्स) के नियम सख्त करने पर विचार कर रहा है। पी-नोट्स के जरिये विदेशी निवेशकों को पहचान जाहिर किए बिना भारतीय शेयर बाजार में निवेश करने की अनुमति है। सेबी अगली बोर्ड मीटिंग में ऐसे विदेशी निवेशकों के लिए केवाईसी अनिवार्य करने का फैसला ले सकता है। यानी विदेशी निवेशकों को अपनी पहचान बतानी होगी। विदेश में रखे भारतीय काले धन को पी-नोट्स के जरिये भारतीय शेयर बाजार में लाना संभव नहीं होगा।

यह सब जानते हैं कि मॉरीशस कर संधि और पी-नोट्स भारत में निवेश के दो प्रमुख माध्यम हैं। इनके जरिये निवेश अक्सर भारतीयों द्वारा ही किया जाता है। लेकिन इन दोनों लूपहोल को बंद करने से प्रॉपर्टी, शेयरों और अनलिस्टेड कंपनियों में विदेशी धन के प्रवाह की रफ्तार धीमी पड़ सकती है। लेकिन बड़ा सवाल यह है कि क्या हमें एक अप्रैल 2017 के बाद शेयर बाजार में भारी गिरावट देखने को मिलेगी? संभवत: नहीं। इसके दो कारण हैं : पहला, मौजूदा निवेश पर टैक्स से छूट है। भविष्य में होने वाले निवेश पर ही टैक्स लगेगा। इसलिए जल्दबाजी में शेयर बेचने की जरूरत नहीं है। दूसरा, भविष्य में होने वाले पूंजीगत लाभ पर भी दो साल तक आधी दर से टैक्स देना होगा। लंबी अवधि में हुए पूंजीगत लाभ पर कोई कर नहीं लगेगा। सिर्फ अनलिस्टेड शेयर या प्रॉपर्टी बेचने पर हुआ पूंजीगत लाभ ही टैक्स के दायरे में आएगा। लेकिन इस पर भी 2019 तक टैक्स में रियायत मिलेगी। सिर्फ शॉर्ट टर्म में हुए कैपिटल गैन पर ही टैक्स देना होगा।

विदेशी निवेशकों की ओर से बेहद कम समय के लिए आने वाला निवेश (हॉट मनी) प्रभावित होगा। शेयरों की कीमतों में शॉर्ट टर्म के उतार-चढ़ाव से मुनाफा कमाने वाले हेज फंड आैर सटोरिए बाजार से पैसे निकाल सकते हैं। मॉरीशस के रास्ते वापस आने वाला भारतीय कालाधन रुक जाएगा। लेकिन इसकी भरपाई वैध स्रोतों से आने वाले धन प्रवाह से की जा सकती है। बेशक, विदेशी संस्थागत निवेशकों (एफआईआई) का दबाव बढ़ने पर सरकार संशोधित संधि पर अमल रोक सकती है या इसे ठंडे बस्ते में डाल सकती है। लेकिन अब तक मोदी सरकार कालेधन और टैक्स-चाेरी की समस्या से निपटने के लिए अपनी नीति पर मजबूती के साथ कायम नजर आई है। ऐसे में इस बात की संभावना कम है कि वह माॅरीशस के साथ संशोधित संधि पर अमल से पीछे हटेगी।

ऐसे में निवेशकों को क्या करना चाहिए? कुछ नहीं। अप्रैल 2017 में जब संशोधित संधि लागू होगी उस समय शेयर बाजार में उथल-पुथल दिख सकती है, ठीक वैसे ही जैसे अमेरिका में ब्याज दरें बढ़ने पर या वैश्विक ग्रोथ को लेकर चिंता बढ़ने पर या फिर आतंकी हमले के समय दिखाई देती है। संशोधित संधि का असर सिर्फ नए निवेश पर पड़ेगा, जिसकी रफ्तार कुछ समय के लिए घट सकती है। लेकिन उस समय भी मध्यम अवधि में भारत की आर्थिक ग्रोथ अपेक्षाकृत अधिक बनी रहेगी। निवेशक भारत की ग्रोथ स्टाेरी में भागीदारी कर लाभ कमाना चाहेंगे।

प्रॉपर्टी की बिक्री और वेंचर कैपिटल इन्वेस्टमेंट्स पर ज्यादा प्रभाव पड़ सकता है। लेकिन यह आंशिक रूप से अच्छा भी है। प्रॉपर्टी के दाम इसलिए भी अधिक हैं क्योंकि इसमें काफी हाॅट मनी और विदेशी धन रहा है। इस पर लगाम लगने से प्रॉपर्टी की कीमतों को नीचे लाने में मदद मिलेगी और खरीदारी बढ़ेगी। कुल मिलाकर, मॉरीशस के लूपहोल को बंद करना अच्छी पहल है। यह लगभग वैसा ही है जैसे कोई नशेड़ी नशे की आादत छोड़ रहा हो। टैक्स छूट और कालेधन पर रोक लगने से प्राॅपर्टी की कीमतें लंबी अवधि में ऊंचे स्तर पर बनी नहीं रह पाएंगी।

नए भविष्य की झलक

1858 में बॉम्बे प्रेसीडेंसी की ब्रिटिश सरकार ने भारी विरोध के बावजूद सभी सरकारी स्कूलों के दरवाजे पहली बार दलितों के लिए खोले थे। उस समय बड़ौदा, कोल्हापुर,त्रावणकोर जैसी रियासतें और सवित्रीबाई फुले, नारायण गुरु जैसे समाज सुधारक भी इसी दिशा में कदम उठा रहे थे। इसमें शिक्षा संस्थानों में दलितों के लिए दाखिला खोलना, छात्रवृतियां आरंभ करना और अन्य कार्य शामिल थे। इन नई संभावनाओं से लाभान्वित होने वालों में से एक नाम भीमराव रामजी अंबेडकर का था, जिन्होंने अमेरिका की कोलंबिया यूनिवर्सिटी और लंदन स्कूल आफ इकोनॉमिक्स तक का सफर तय किया। वह अर्थशास्त्र में पीएचडी करने वाले पहले भारतीय बने और आगे चलकर आधुनिक भारत के निर्माता कहलाए। 1932 में ब्रिटिश सरकार ने दलित वर्ग के लिए मुसलमानों की तरह पृथक निर्वाचन का प्रावधान जारी कर दिया। भारत के राजनीतिक भविष्य के लिए इसके दूरगामी परिणाम को देखते हुए इसी वर्ष राजा-मुंजे पैक्ट हुआ जिसमें दलितों के लिए पृथक निर्वाचन के बजाय आरक्षित सीटों पर सहमति बनी थी। डॉ. मुंजे हिंदू महासभा के नेता थे जो कांग्रेस की राजनीति से किनारा करके आए थे। उन दिनों एमसी राजा दलित नायक थे जो पेरियार की द्रविडियन राजनीति का दलित विरोधी चरित्र देख कर जस्टिस पार्टी छोड़ कर

आए थे। वह ब्रिटिश-इंडिया की इम्पीरियल लेजिस्लेटिव काउन्सिल के पहले दलित सदस्य भी थे। इसके तुरंत बाद ही प्रसिद्ध पूना पैक्ट हुआ जिसे गांधी-अंबेडकर पैक्ट भी कहा जाता हैं। हालांकि इस पैक्ट पर गांधी के हस्ताक्षर नहीं हैं। इस समझौते का दूसरा पक्ष वह था जिसे आज हिंदू दक्षिणपंथ कहा जाता हैं। इसमें पंडित मदन मोहन मालवीय, राजेंद्र प्रसाद, और पूंजीवादी विचार के समर्थक सी रजगोपालचारी तथा वालचंद हीराचंद जैसे बड़े उद्योगपति शामिल थे। पूना पैक्ट ने न सिर्फ दलितों के लिए आरक्षण के प्रावधान को स्वीकार किया, बल्कि सरकारी नौकरियों में भी दलितों की हिस्सेदारी सुनिश्चित करने का प्रण लिया। पूना पैक्ट वस्तुतः एक सामाजिक अनुबंध जैसा जिसमें उत्तर- औपनिवेशिक राज्य की सामाजिक नीति की दिशा तय की गई थी। इसे भारतीय गणराज्य का प्रथम मूलभूत दस्तावेज भी कहा जा सकता है। पूना पैक्ट के बिना दलितों को अधिकारिक तौर पर हिंदू समाज से पृथक गिना जाता और इसके चलते आबादी के आधार पर हुए बंटवारे के समय हिंदू आबादी का प्रतिशत काफी काम हो जाता और भारत का वर्तमान राजनीतिक नक्शा शायद कुछ और होता। बंगाल में ऐसा ही हुआ। यहां पर कई हिस्से पाकिस्तान में इसलिए चले गए, क्योंकि उन इलाकों के दलितों को मुस्लिम लीग अपने साथ जोड़ने में सफल रही थी। इसी तरह की स्थिति पंजाब में बनी। यहां लाहौर समेत कई इलाके ईसाइयों के वोट के कारण ही पाकिस्तान का हिस्सा बने।

स्वतंत्र भारत ने भी दलितों के लिए आरक्षण की व्यवस्था को कायम रखा और शिक्षण संस्थानों और सरकारी नौकरियों में दलितों का स्थान सुरक्षित किया। आजादी के बाद दलित उत्थान के लिए किए गए प्रयासों में आरक्षण ही सबसे सफल नीति रही है। आज समाज में जो सामाजिक गतिशीलता और परिवर्तन दिखता है उसका एक मुख्य कारण आरक्षण है, जिसने संभवतः विश्व में सबसे बड़े मध्यवर्ग को इतने कम समय में निर्मित किया है। आज आरक्षण से लाभान्वित पीढ़ी के बच्चे बड़ी संख्या में सरकारी नौकरी से इतर क्षेत्रो में जा रहे हैं और बिना आरक्षण के ही सफलता प्राप्त कर रहे हैं, लेकिन उनकी सफलता में भी आरक्षण नीति का योगदान है, क्योंकि उसी ने उनसे पहले की पीढ़ी को यह अवसर प्रदान किया कि वह अपनी आने वाली पीढियों को एक नया भविष्य दे सके। इसी नए भविष्य की झलक हाल में तब दिखी जब दलित जाति से आने वाली एक लड़की टीना डाबी ने विश्व की सबसे कठिन परीक्षाओं में से एक संघ लोकसेवा आयोग में प्रथम प्रयास में ही शीर्ष स्थान हासिल किया और वह भी महज 22 साल की उम्र में।

आम तौर पर यह कहा जाता है कि आरक्षण से अक्षम लोगों का चयन होता है और उससे संस्थानों की दक्षता कम होती है। कुछ तो यह भी कहते हैं कि आरक्षण से देश 'बर्बाद ' हो रहा हैं। सच्चाई इससे कोसों दूर है। इसके कोई तथ्यात्मक प्रमाण नहीं हैं कि आरक्षण से संस्थानों की काबिलियत कम हो रही है। 2010 में अश्विनी देशपांडे और अमेरिकी प्रोफेसर थॉमस विस्कॉफ द्वारा रेलवे पर किए गए एक विस्तृत सर्वे में यह पाया गया था कि आरक्षण से संस्थागत दक्षता और काबिलियत पर कोई फर्क नहीं पड़ता। इस सर्वे के नतीजे वर्ल्ड डेवलपमेंट जर्नल में भी प्रकाशित हुए थे। सर्वे के अनुसार आरक्षण रेलवे में उत्पादकता और दक्षता बढ़ाने में सहायक बना। आरक्षण से मेरिट का नुकसान होने की अवधारणा इस पर आधारित है कि बिना आरक्षण के केवल मेरिट की बदौलत ही चयन होता है। जातियों और भाई-भतीजावाद से भरे समाज में यह संभव नहीं है फिर भी कई लोग यह सब रोज देखकर भी अनजान बने रहना चाहते हैं। यह स्वीकार किया जाना चाहिए कि आरक्षण ने देश के एक बहुत बड़े तबके को समान अवसर देकर उसे मुख्यधारा में लाकर मेरिट का दायरा बढ़ाया है।

आरक्षण का मुद्दा जटिल तब हुआ जब मंडल आयोग ने अन्य पिछड़ा वर्गों के लिए आरक्षण का प्रावधान किया। इसके तहत तय पैमाने इस प्रकार के हैं कि कोई भी जाति इसमें शामिल होने का दावा कर सकती है, अगर वह सामाजिक रूप से पिछड़ी है। सामाजिक रूप से ताकतवर कई मंझली जातियों को इसके तहत आरक्षण मिल रहा है। इसके कारण ही पटेल, जाट और इन जैसी अन्य जातियां यह सवाल कर रही हैं कि आखिर उन्हें आरक्षण से बाहर क्यों रखा गया है? चूंकि आरक्षण अब चुनावी वादों में बटने लगा है इसलिए स्थिति और जटिल एवं विस्फोटक होती जा रही है।

अब जब आरक्षण की मांग बढ़ती जा रही है तब इसकी अनदेखी नहीं की जा सकती कि जिन जातियों को आरक्षण की सबसे अधिक आवश्यकता थी उन्होंने कभी भी इसके लिए सड़क पर उतर कर हिंसा नहीं की। उलटे उनके आरक्षण के समर्थन में शेष जातियों के लोग खड़े हुए। आरक्षण की बढ़ती मांग का मुख्य कारण अवसरों की कमी है। अगर 1.25 अरब आबादी वाले देश में सिर्फ गिनती की नौकरियां होंगी तो फिर आरक्षण के विरोध और पक्ष में इन नौकरियों के लिए मारामारी तो होगी ही। यह भारत की सबसे बड़ी असफलता कही जाएगी कि आजादी के इतने दशकों बाद भी देश में सबके लिए गुणवत्ता वाले प्राथमिक स्कूल तक नहीं हैं, इंजीनियरिंग और मेडिकल कालेज की बात तो भूल ही जाइए। उम्मीद है कि देश के नीति-निर्माता इस तरफ ध्यान देंगे ताकि जैसी उपलब्धि टीना डाबी ने हासिल की वह अनोखी नहीं, बल्कि आम बात हो जाए।

[लेखक अभिनव प्रकाश, दिल्ली विश्वविद्यालय में असिस्टेंट प्रोफेसर हैं]

THE TIMES OF INDIA

Chilling effect: Centre and Supreme Court should reconsider their support to criminalising defamation

The apex court has given a disappointing judgment by upholding the criminal defamation law, which well served the interests of the colonial regime which drafted it in 1860 but does a disservice to modern India. Many senior lawyers and constitutional experts like Soli Sorabjee point out that the right remedy is civil suits seeking heavy damages for harm to reputation, not criminal provisions that can be misused to stifle free speech – and stifle media. As the law commission has noted, defamation law as it stands can lead to a 'chilling effect' on the publication of free and independent news.

In the court's judgment the criminal defamation provisions in Sections 499 and 500 of IPC have to be read against Article 21 of the Constitution that guarantees protection of life and personal liberty. This is also the position taken by the Centre, that protection of an individual's reputation is as important as the right to life. But an ironic counterpoint to these claims is provided by the murders of two journalists within a span of 24 hours – in Bihar and Jharkhand – demonstrating vividly the risks run by those who take their job of disseminating news seriously. What about their right to life? And can the harm done to them really be set against harm done to someone who claims to be defamed? The main feature of criminalised defamation is threatening media and others into self-censorship, stifling fair criticism.In 2010 the UK abolished criminal libel as anachronistic, recognising that it's used less to protect reputations and more to silence dissent. India also needs to cast away outdated laws inherited from the British, including Section 377 that criminalises homosexuality. A diversity of people like Congress vice-president Rahul Gandhi, BJP leader Subramanian Swamy and AAP's Delhi chief minister Arvind Kejriwal stand united against criminal defamation today. The apex court must heed their voices, coming from all quarters of the political spectrum.

THE ECONOMIC TIMES

A NEET solution for the nation.

The Supreme Court's order upholding the common entrance examination for undergraduate medical and dentistry programmes, the National Eligibility and Entrance Test (NEET), is a welcome step. Revoking its 2013 order ruling, the court categorically stated that a single test yielding an all-India merit list does not undermine the rights of states and private institutions. In asserting this, the court has paved the way for similar tests for admission to other professional courses.The decision is a major relief for students, who on an average appear for 10 of the 50-odd entrance examinations. Making NEET compulsory will create a national standard for intake into medical and dentistry programmes. The court's decision does not affect reservation policy or safeguards for minority institutions. All it requires of every institution is to draw on the national merit list for its intake. This will ensure that every student admitted has the basic aptitude and the knowledge base to become a competent medical professional. A uniform admission standard will benefit the quality of medical professionals. The NEET will push the 30-odd school boards to adhere to common curriculum and standards for the sciences.With the legal question settled, it is now up to the Medical Council of India and the Central Board of Secondary Education to ensure a fair and objective assessment of aptitude and knowledge. Demands by parliamentarians to defer implementation by a year and claims that the NEET undermines the special status of Jammu and Kashmir

needn't be encouraged. A national eligibility and entrance test is a good step that will improve the quality of medical education, the mobility of medical students and their employment prospects. Politicians need to allow for replicating this effort in other programmes.

The Indian EXPRESS
JOURNALISM OF COURAGE

The river challenge

Cleaning the Ganga will need sustained effort, constant vigilance

Written by Justin Rowlatt.

It is clear that Narendra Modi sees cleaning up the Ganges as nothing less than a mission from God. "Maa Ganga is screaming for help", he told the crowd at a celebration rally in the hours after his landslide victory two years ago. "She is saying I hope one of my sons gets me out of this filth."But fulfilling his promise to clean the holy river may be one of his greatest challenges because if anything speaks of the lack of governance in India it is the terrible state of one of India's mightiest rivers, as I found while investigating for BBC World News.You don't have to be a scientist to know there is a problem. In Kanpur, the centre of India's huge leather industry, Rakesh Jaiswal, a veteran environmental campaigner led me to a filthy stream that flows into the river.I am totally overwhelmed — disabled — by the warm, oily stench coming from the water. The smell is impossible to describe. There's human waste in there, and something very rotten indeed. But that's just what a wine buff would call the "top notes". Behind them are other awful odours that I can't even begin to identify: Meaty, acidic and very wrong. Instinct takes over. I begin to retch uncontrollably. And each time my body convulses I suck in another great lungful of that fetid air. It is only with great effort that I manage to avoid vomiting. Once I get my breath back, Rakesh tells me the last time he tested the water it was contaminated with numerous pollutants including heavy metals and pesticides. He says in 20 years of campaigning he has only seen the river deteriorate. "All hope is dead for me now", he says in despair. But we should not give up on the Ganges. Just two years into Modi's "Clean Ganga Miss-ion" and it is too early to judge progress, but during the making of our BBC World News documentary on the subject we found encouraging signs. For a start the government now openly acknowledges that corruption has been a problem — an important step toward dealing with the issue. It has tightened up the rules on pollution and has improved enforcement, it says more than 100 tanneries have already been closed down. The government is also open about sewage treatment, or the lack of it. At one of the huge effluent plants in Varanasi, the chief engineer acknowledges that only a third of India's holiest city is actually connected to a sewer, "the rest goes straight into the Ganges", he says. And, the figures outside the cities are even worse. Just 20 per cent of the sewage from the 450 million who live within the catchment area of the river is reckoned to be treated. Recognising just how big a challenge cleaning up the Ganges will be is an important beginning, but now the hard work starts. Back in the eighties, Rajiv Gandhi's government spent millions on muscular infrastructure to clean the river, yet pollution only got worse. So why does Modi's government believe it can do better? "Because we have learned lessons from their mistakes," says the environment minister, Prakash Javadekar with a confident smile. He tells me Modi is leading from the front: "There is tremendous focus and therefore we are very confident we will achieve our targets". The government has set itself tough targets and, to be fair, assigned a decent budget — almost $3 billion — to the world's biggest river cleaning project — but for the moment it is dwarfed by the sheer scale of what it is attempting to do. "We are not saying that the whole Ganga mission will be complete in five years, no. Five years will ensure there is a marked difference but this is a long project," says Javadekar. "The Rhine and the Thames were in the same dirty state 50 or 60 years ago and it took nearly 20 years to change the overall ecology of that, and we will also achieve it within 10 to 15 years' time." If the government is to succeed and clean up this mighty river it will require sustained effort and constant vigilance. But Modi has an important asset: The fact that so many Indians want him to succeed. And if India can clean up one of the dirtiest rivers in the world, who knows what else this great rising nation can achieve?